साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 7, अंक : 20 (प्रति बुधवार), इन्दौर 5 जनवरी 2022 से 11 जनवरी 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

जलवायु प्रणाली पर वातावरण के सूक्ष्म कणों का पड़ता है असर- अध्ययन

मुंबई। पृथ्वी की जलवायु एक अत्यंत जटिल प्रणाली है जो कई अलग-अलग प्रक्रियाओं के सूक्ष्म संतुलन द्वारा संचालित होती है। जिनमें कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ2) की समुद्री हवा के साथ अदला बदली होती है। जलवायु परिवर्तन के बारे में समझ बढ़ाने के लिए महासागर में सीओ2 की निगरानी करना महत्वपूर्ण है। इकोले पॉलीटेक्निक फेडरेल डी लॉजेन (ईपीएफएल) और भूमध्यसागरीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एमआईओ) के वैज्ञानिकों ने हाल ही में इस प्रक्रिया के एक नए हिस्से की खोज की है। उन्होंने वातावरण में फैले कार्बनिक फास्फोरस के एक नए स्रोत की पहचान की जो संभावित रूप से फाइटोप्लांकटन और माइक्रोएल्गे के विकास में मदद करेगा। जिनमें से उत्तरार्द्ध हमारे ग्रह को रहने योग्य बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं।

समुद्री वातावरण में कार्बनिक फास्फोरस के जमाव का अब तक अध्ययन नहीं किया गया है, लेकिन इस कार्य से पता चला है कि यह जलवायु के लिए महत्वपूर्ण प्रभावों के साथ महत्वपूर्ण पोषक तत्व का पूरी तरह से अनदेखा स्रोत है। फाइटोप्लांकटन जो झीलों, समुद्रों और महासागरों की सतह की परतों पर रहते हैं। इनके बढ़ने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिनमें से लोहा, नाइट्रोजन और फास्फोरस मुख्य हैं। इन पोषक तत्वों की प्रचुरता फाइटोप्लांकटन को प्रकाश संश्लेषण के महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने में मदद करती है। जिसके दौरान बड़ी मात्रा में सीओ2 हवा से अवशोषित होती है और बायोमास में परिवर्तित हो जाती है, जबकि ऑक्सीजन भी छोड़ती है। यह प्रक्रिया पृथ्वी की जलवायु को नियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फाइटोप्लांकटन जलीय खाद्य श्रृंखला का आधार भी है, जो समुद्री प्रणालियों को बनाए रखता है। फास्फोरस की आपूर्ति और जैव उपलब्धता फाइटोप्लांकटन की वृद्धि दर को प्रभावित करती है, जिस दर पर वे प्रकाश संश्लेषण करते हैं, इसलिए वे सीओ2 की मात्रा को अवशोषित करते हैं। इसलिए उन सभी तरीकों की पहचान करना महत्वपूर्ण है जिनसे समुद्री पारिस्थितिक तंत्र उपजाऊ होते हैं। यह जलवायु प्रणाली में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकता है और साथ ही इस बात का पता भी चल सकता है कि मानव गतिविधियां इसे कैसे प्रभावित करती हैं। अध्ययनकर्ता कालीओपी वायोलाकी ने बताया कि वैज्ञानिकों को पहले से ही पता था कि फॉस्फेट खनिजों और आयनों के रूप में वायुजनित धूल द्वारा बड़ी मात्रा में अकार्बनिक फास्फोरस समुद्री पारिस्थितिक तंत्र में ले जाया जाता है। लेकिन यह एक अधूरी तस्वीर है। कालीओपी वायोलाकी ने एमआईओ में दो साल के लंबे शोध कार्यक्रम का आयोजन और संचालन किया। उस दौरान, उन्होंने पाया कि बायोएरोसोल-वायुजनित जैविक कण, जैसे कि वायरस, बैक्टीरिया, कवक, पौधे के फाइबर और पराग-में कार्बनिक फास्फोरस की महत्वपूर्ण मात्रा होती है। हालांकि इसकी सटीक मात्रा के बारे में अभी भी जानकारी नहीं है, हम जानते हैं कि यह महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अकार्बनिक फास्फोरस की मात्रा के बराबर है जो धूल एरोसोल की आपूर्ति करता है। इसके अलावा,

कार्बनिक फास्फोरस अक्सर फास्फोलिपिड्स के रूप में पाया जाता है, जो कोशिका झिल्ली का एक प्रमुख घटक है। एलएपीआई के प्रमुख और अध्ययनकर्ता अथानासियोस नेनेस कहते हैं कि यह जानकर कि स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र बायोएरोसोल के माध्यम से समुद्री पारिस्थितिक तंत्र को उर्वरित कर सकते हैं, यह हमें पूरी तरह से नया दृष्टिकोण देता है। यह जानकारी हमें कार्बन चक्र और जलवायु को प्रभावित करने वाली प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने में मदद करेगा। कार्बनिक फास्फोरस को अभी तक जलवायु मॉडल में शामिल नहीं किया गया है। लेकिन ऐसा करने से यह समझने में एक बड़ा सुधार साबित हो सकता है कि समुद्री पारिस्थितिक तंत्र जलवायु संकट का मुकाबला कैसे करते हैं। घनत्व, तापमान, ऑक्सीजन स्तर और खारेपन के मामले में महासागर की परतें एक से दूसरे में भिन्न होती हैं और जलवायु परिवर्तन आगे के परिवर्तनों को प्रेरित कर रहा है। यह परतों के बीच मिश्रण को और अधिक कठिन बना देता है और सीओ2 अवशोषण को रोकता है। जैसे-जैसे महासागर अधिक स्तरीकृत होता जाता है, गहरे समुद्र में उपलब्ध पोषक तत्वों के लिए विभिन्न परतों तक पहुंचना कठिन होता जाता है। यह समुद्री आवासों और कई समुद्री प्रजातियों के लिए खाद्य आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है, विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में जहां सीमित फास्फोरस की आपूर्ति होती है। फास्फोरस का नया स्रोत पूरी तरह से बदल सकता है कि कैसे भूमध्यसागरीय और अन्य समुद्रों को बदलती जलवायु पर प्रतिक्रिया करने का अनुमान लगाया जा सकता है। इस अध्ययन से पता चलता है कि पर्यावरण के लिए वायुमंडलीय कण कितने महत्वपूर्ण हैं। आकार में सूक्ष्म होने के बावजूद, उनकी आपूर्ति में भिन्नता पूरे जलवायु प्रणाली में बड़े बदलाव कर सकती है। यह अध्ययन एनपीजे क्लाइमेट एंड एटमॉस्फेरिक साइंस जर्नल में प्रकाशित हुए हैं।

महामारी के दौरान बढ़ा वायु प्रदूषण

रुस। दक्षिण एशिया में वायु प्रदूषकों का बढ़ता उत्सर्जन क्षेत्रीय और दुनिया भर के वातावरण के लिए बहुत हानिकारक हो सकता है। इसलिए, इन उत्सर्जनों का उपग्रह आंकड़ों से पता लगाना आवश्यक है ताकि प्रदूषण फैलाने वाली गतिविधियों पर लगाम लगाई जा सके। यह सर्वविदित है कि विभिन्न गैसों और पार्टिकुलेट मैटर की अधिक मात्रा के संपर्क में आने से मानव स्वास्थ्य पर इसका बहुत बुरा असर पड़ता है।कोरोना महामारी को लेकर लगाए गए लॉकडाउन के दौरान आर्थिक गतिविधियां कम होने से भारत के अधिकांश हिस्सों में वायु प्रदूषण में कमी आई। लेकिन उपग्रह द्वारा की गई निगरानी से पता चलता है कि देश के मध्य-पश्चिमी क्षेत्र और उत्तर भारत के कुछ हिस्सों में सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत महामारी के दौरान वायु प्रदूषण में वृद्धि पाई गई। अत्याधुनिक उपग्रह द्वारा की गई निगरानी के आधार पर वैज्ञानिकों ने पाया कि भारत के मध्य-पश्चिमी भाग और उत्तर भारत में वायु प्रदूषण का अधिक खतरा बना रहता है। इसलिए इन इलाकों में सांस संबंधी तकलीफ बढ़ने की ज्यादा आशंका बनी रहती है। मल्टी-सेटेलाइट रिमोट सेंसिंग ने वायु प्रदूषक परीक्षण की दिशा में पिछले एक दशक में काफी प्रगति हुई है। उपग्रह और यथास्थान अवलोकन की माप से वायु प्रदूषण की समझ अधिक बढ़ जाती है। वर्ष 2020 में कोरोना वायरस महामारी की रोकथाम के लिए पूरे भारत में लॉकडाउन लगाया गया था। इससे अर्थव्यवस्था पर भारी असर पड़ा, हालांकि इसका एक सकरात्मक प्रभाव यह देखने को मिला कि धरती के आसपास की हवा की गुणवत्ता में कुछ समय के लिए सुधार हुआ।

कार्बन की अधिकता वाले तारे अपने से छोटे तारों से भारी तत्व अपने में मिला लेते हैं-शोध

नई दिल्ली। वैज्ञानिक लंबे समय से सितारों में उपलब्ध भारी तत्वों को जानने के लिए उत्सुक रहे हैं। खगोलविदों का मानना है कि कार्बन की अधिकता वाले सितारों में लोहे की तुलना में भारी तत्वों की उपलब्धता बहुत अधिक हो सकती है। भारतीय खगोलविदों के एक नए शोध में इस बात का पता चला है कि तारे अपने से कम द्रव्यमान वाले तारों यानी अपने से छोटे तारों की सतह के कई महत्वपूर्ण और भारी तत्वों को अपनी और आकर्षित कर उसे अपने में मिला लेते हैं। यह सही है कि ब्रह्मांड में कई रासायनिक तत्वों और उनके समस्थानिकों की उत्पत्ति और विकास को समझने में महत्वपूर्ण विकास हुआ है। परंतु अभी तक ब्रह्मांड में भारी तत्वों, यानी लोहे से भी अधिक भारी तत्वों की उत्पत्ति और विकास के बारे में स्पष्ट जानकारी का अभाव है, यानी इसको अभी तक समझा नहीं जा सका है।

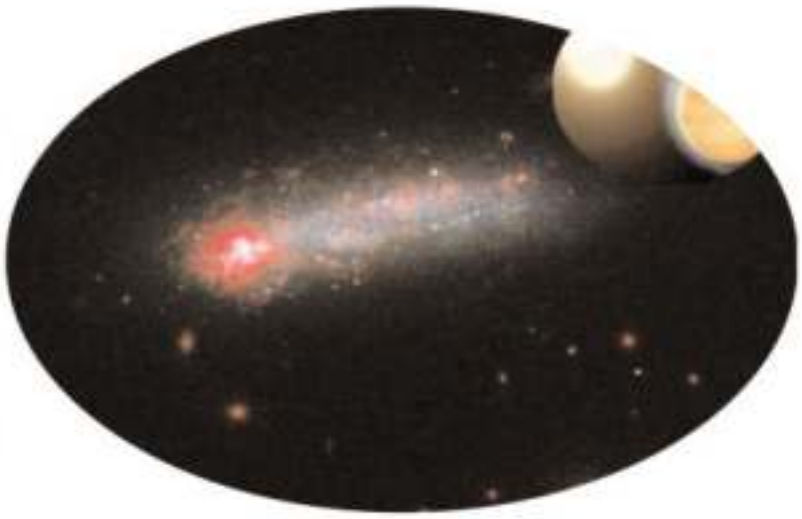

भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के एक स्वायत्त संस्थान बेंगलुरु के भारतीय खगोल भौतिकी संस्थान के खगोलविदों की एक टीम ने इस गुत्थी को सुलझाया है। प्रोफेसर अरुणा गोस्वामी की अगुवाई में मीनाक्षी पी और शेजीलम्मल जे ने कई कार्बन एन्हांस्ड मेटल-पुअर (सीईएमपी) सितारों की सतह की रासायनिक संरचना का विश्लेषण किया। इस पहेली को सुलझाने में उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रगति की है। यह शोध %द एस्ट्रोफिजिकल जर्नल% में प्रकाशित हुआ है। कार्बन एनहांस्ड मेटल पुअर (सीईएमपी) तारों को विविध प्रकार के भारी तत्वों के आधार पर इन्हें चार समूहों में वर्गीकृत किया जाता है। जिसमें भारी तत्वों के समूह प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये ज्यादातर बहुत छोटे तारे, विशाल या उससे भी अधिक विशाल तारे हैं। जो तारे इन उत्पत्ति के चरणों से होकर गुजरते हैं, वे लोहे से भारी तत्वों का उत्पादन नहीं कर सकते हैं। उत्पत्ति के चरणों के दौरान जिसमें तारों का अस्तित्व मौजूद है, उनसे भारी तत्वों के उत्पादन की संभावना नहीं होती है। हालांकि, इन तारों की सतह की रासायनिक संरचना में भारी तत्वों की अधिकता दिखाई देती है, जो सूर्य की तुलना में लगभग 100 से 1000 गुना अधिक बड़े होते हैं। प्रो गोस्वामी ने बताया कि हमने भारी तत्वों की बहुतायत की उत्पत्ति का अध्ययन किया और हमें सतह पर रसायनों के प्रचुरता में मौजूद होने के संभावित संकेत प्राप्त हुए। इस गुत्थी को सुलझाने में शोधकर्ताओं के इस टीम ने इंडियन एस्ट्रोनॉमिकल ऑब्जर्वेटरी, हानले में 2-एम हिमालयन चंद्र टेलीस्कोप (एचसीटी), चिली के ला सिला में यूरोपीय दक्षिणी ऑब्जर्वेटरी में 1.52-एम टेलीस्कोप और जापान के राष्ट्रीय खगोलीय वेधशाला द्वारा संचालित मौनाके, हवाई के शिखर पर 8.2-एम सुबारू टेलीस्कोप से प्राप्त किए गए सितारों के उच्च गुणवत्ता, उच्च-रिज़ॉल्यूशन स्पेक्ट्रा का विश्लेषण किया। उन्होंने अपने अध्ययन में कार्बन, मैग्नीशियम, स्ट्रोंटियम, बेरियम, यूरोपियम, लैंथेनम आदि जैसे कुछ प्रमुख तत्वों के मौलिक बहुतायत अनुपात का उपयोग किया, जिससे कई महत्वपूर्ण संकेत मिले हैं कि किस तरह से इन तत्वों की अधिकता बढ़ती है। कार्बन एनहांस्ड मेटल पुअर (सीईएमपी) सितारों पर देखे गए बढ़े हुए भारी तत्व वास्तव में उनके कम-द्रव्यमान वाले तारों के विकास के एक चरण में उत्पन्न होते हैं जिसे एसिम्प्टोटिक जाइंट ब्रांच (एजीबी) कहा जाता है और जिसे बदल दिया जाता है। कम द्रव्यमान वाले एक जैसे तारे आगे बहुत छोटे तारों के रूप में विकसित हुए हैं जिनका पता नहीं लग पाता है। वैज्ञानिकों ने वर्गीकरण योजनाओं के आधार पर एक समूह बनाया और यह जांचने के लिए स्पेक्ट्रोस्कोपिक तकनीकों का उपयोग किया कि क्या तारे रेडियल वेग में बदलाव दिखाते हैं और पाया कि अधिकांश तारे वास्तव में दो हिस्सों में बटे हैं या बायनेरिज हैं। शोधकर्ता शीजीलम्माल और मीनाक्षी ने बताया कि विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि कम द्रव्यमान वाले एक जैसे तारे कम धातु के भी होते हैं।

58 फीसदी बच्चों और युवाओं ने कहा, उन्हें और आने वाली पीढ़ियों को धोखा दे रही हैं सरकारें

नई दिल्ली। सरकार द्वारा जलवायु परिवर्तन के खिलाफ की जा रही कमजोर कार्रवाई को लेकर भारत सहित दुनिया भर के युवा चिंतित हैं जोकि उनमें मानसिक दबाव पैदा कर रही है। वैश्विक स्तर पर अपनी तरह के इस सबसे बड़े वैज्ञानिक अध्ययन में शामिल करीब आधे युवाओं (45 फीसदी) का मानना है कि जलवायु संकट को लेकर उनके मन में जो चिंता और डर है वो उनके दैनिक जीवन और कामकाज को प्रभावित कर रही है। वहीं भारत के 74 फीसदी बच्चों और युवाओं के मन में भी यही चिंता है।

वहीं सर्वेक्षण में शामिल 58 फीसदी बच्चों और युवाओं का कहना है कि सरकारें उन्हें और आने वाली पीढ़ियों को धोखा दे रही हैं, जबकि 64 फीसदी का कहना है कि उनकी सरकारें जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं कर रही हैं। 61 फीसदी युवाओं और बच्चों का कहना है कि जिस तरह से सरकारें जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए काम कर रही हैं उनको देखकर लगता है कि वो उनकी, उनके ग्रह की और आने वाली पीढ़ियों की रक्षा नहीं कर पाएंगी। सर्वेक्षण में शामिल आधे से ज्यादा बच्चों और युवाओं का कहना है कि वो डर हुए, उदास, चिंतित, क्रोधित, कमजोर, असहाय और अपने आप को दोषी महसूस कर रहे हैं। वहीं लगभग 55 फीसदी का मानना है कि उनके पास उतने अवसर नहीं हैं जितने उनके माता-पिता के पास थे। लगभग 65 फीसदी का कहना है कि कि सरकारें युवाओं की विफलता का कारण हैं, जबकि लगभग 59 फीसदी ने जलवायु परिवर्तन को लेकर अत्यधिक चिंता जताई है। लगभग आधे (48 फीसदी) का कहना है कि जब उन्होंने जलवायु परिवर्तन के बारे में दूसरों से बात की, तो उन्हें अनदेखा या खारिज कर दिया गया। यह अध्ययन 16 से 25 वर्ष के 10 हजार बच्चों पर किए सर्वेक्षण पर आधारित है, जिसे पोलिंग कंपनी कैंटर द्वारा 18 मई से 07 जून 2021 के बीच संपन्न किया गया था। अपने इस शोध में शोधकर्ताओं ने भारत, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, नाइजीरिया, फिलीपींस, फिनलैंड, पुर्तगाल, ब्राजील और फ्रांस, प्रत्येक देश से 1,000 बच्चों को सर्वे में शामिल किया था। इस अध्ययन में कई संस्थानों के शोधकर्ताओं ने सहयोग दिया है, जिसमें यूनिवर्सिटी ऑफ बाथ, हेलसिंकी विश्वविद्यालय, एनवाईयू लैंगोन हेल्थ, यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंग्लिया, स्टैनफोर्ड मेडिसिन सेंटर फॉर इनोवेशन इन ग्लोबल हेल्थ, ऑक्सफोर्ड हेल्थ एनएचएस फाउंडेशन ट्रस्ट और द कॉलेज ऑफ वूस्टर, क्लाइमेट साइकियाट्री एलायंस से जुड़े शोधकर्ता शामिल थे। यह अध्ययन अंतराष्ट्रीय जर्नल द लैंसेट प्लैनेटरी हेल्थ के दिसंबर 2021अंक में प्रकाशित हुआ है। वहीं 75 फीसदी युवाओं को डर है कि आने वाला भविष्य भयावह है। यह डर पुर्तगाल के 81 फीसदी युवाओं और फिलीपींस के 92 फीसद युवाओं के मन में है। यह पहली बार है जब युवाओं ने जलवायु संकट को लेकर अपनी चिंता के लिए कथित तौर पर सरकार की निष्क्रियता और विश्वासघात को भी जिम्मेवार माना है। गौरतलब है कि इससे पहले यूएनडीपी और यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड द्वारा जलवायु परिवर्तन को लेकर किए बड़े जनमत सर्वे में भी 70 फीसदी किशोरों ने जलवायु परिवर्तन पर चिंता जताई थी। उन युवाओं का मानना था कि हम जलवायु आपातकाल में जी रहे हैं और इसे रोकने के लिए ठोस कार्रवाई की जानी चाहिए। इस अध्ययन में वैश्विक स्तर पर बच्चों और युवाओं के बीच व्यापक मनोवैज्ञानिक संकट दर्ज किया गया था। शोधकर्ताओं ने चेतावनी दी है कि इस तरह बच्चों और युवाओं के मन में व्याप्त पीड़ा, डर, कार्यात्मक प्रभाव और विश्वासघात की भावना उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालेगी। जलवायु परिवर्तन के मामले में सरकार की निरंतर निष्क्रियता, मनोवैज्ञानिक रूप से भी नुकसानदायक है। यह किसी हद तक अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून का उल्लंघन जैसा है। इस बारे में शोध और बाथ विश्वविद्यालय से जुड़ी शोधकर्ता कैरोलिन हिकमैन का कहना है कि यह अध्ययन हमारे बच्चों और युवाओं के मन में मौजूद व्यापक जलवायु चिंता की एक भयावह तस्वीर पेश करता है।

कचरे के प्रति व्यवहार में बदलाव लाना जरूरी

मुंबई। घरों, संस्थानों और फैक्टरियों से निकलने वाले अपशिष्ट (कूड़ा) से निपटने के लिए भारत सरकार अपनी नीतियों को तेजी से विकसित कर रही है। अब ये बदलाव हमारी गतिविधियों में भी परिलक्षित होना चाहिए। हमारा कूड़ा हमारा संसाधन बनना चाहिए, जोकि दोबारा काम और इस्तेमाल लायक बनाया जा सके। यह कदम हमारी दुनिया में न सिर्फ अधिक से अधिक सामान की खपत को कम करेगा, बल्कि पर्यावरण को होने वाले नुकसान से भी बचाएगा। यह सभी के लिए हितकारी समाधान है। हम जानते हैं कि समाज जब अमीर और शहरी बनता है तो ठोस अपशिष्ट की प्रकृति बदल जाती है। सड़नशील (गीला) कूड़े की जगह घरों से प्लास्टिक, कागज, धातु और अन्य गैर-सड़नशील (सूखा) कूड़ा ज्यादा निकलता है। साथ ही प्रति व्यक्ति कूड़े का उत्पादन भी बढ़ जाता है। देश के बहुत सारे शहरी इलाकों में कूड़ा उत्पादन में भारी इजाफा हो गया है।

साल 2020 में जब पहला म्युनिसिपल सॉलिड वेस्ट रूल्स आया था, तो वो बहुत सारे अन्य देशों में पहले से मौजूद नियमों पर आधारित था। इसके तहत कूड़े को संग्रह कर उसे परिवहन के माध्यम से सुरक्षित लैंडफिल साइट पर ले जाना और उसका निपटान करना था। इसका मुख्य उद्देश्य हमारे आसपास की गंदगी को हटाकर शहर को ÷साफ÷ करना था। लेकिन यह नीति व्यवहार में प्रतिबिंबित होने में विफल रही और हमारे शहर में कूड़े का कहर बढ़ता चला गया। नगरपालिका सेवाओं की कमी के चलते जो कूड़ा नहीं उठाया जा सका, वो हमारे पड़ोस में जमा हो गया। जिसे उठाया गया, उसे डम्प कर दिया गया और वो आज शर्मिंदगी के ÷पहाड़÷ के रूप में दिख रहा है। पिछले कुछ सालों में देश में कूड़ा प्रबंधन की रणनीति में तेजी से बदलाव हुआ है। केंद्र सरकार की वर्तमान नीति जिसके तहत स्वच्छ भारत अभियान (एसबीएम) 2.0 को शुरू किया गया है। इसका पूरा ध्यान स्रोत पर ही कूड़े की छटाई, गीले और सूखे कचरे का प्रसंस्करण और कम से कम कूड़े को लैंडफिल साइट्स पर भेजना है। एसबीएम 2.0 के दिशा-निर्देशों के मुताबिक, केवल प्रतिक्रियाहीन और प्रसंस्करण में रिजेक्ट हो चुके अपशिष्ट, जिनका गीले या सूखे रूप में अपशिष्ट प्रबंधन नहीं किया जा सकता है, उन्हें ही लैंडफिल साइट्स पर भेजा जा सकता है, लेकिन इनकी मात्रा कुल अपशिष्ट का सिर्फ 20 प्रतिशत होना चाहिए। यानी कि निर्देशों का मुख्य आधार यह है कि शहर लैंडफिल से मुक्त हो। वे सभी अपशिष्टों को रिकवर और उनका पुनः प्रसंस्करण करें। गाइडलाइन इस बात पर जोर देती है कि ÷अपशिष्ट से ऊर्जा÷ (डब्ल्यूटीई) प्रोजेक्ट आर्थिक और संचालन के रूप में तभी व्यावहारिक है, जब प्रतिदिन न्यूनतम 150-200 टन गैर पुनर्चक्रण और उच्च ऊर्जा मान वाले पृथक किये गये सूखे अपशिष्ट जाएं। हमारी सीख यह रही है कि म्युनिसिपल अपशिष्ट को जलाकर ऊर्जा उत्पादन करने का वादा करने वाला डब्ल्यूटीई कोई जादुई हथियार नहीं है। ये गंभीर है कि जलाने और ऊर्जा उत्पादन के लिए जो अपशिष्ट भेजा जाता है, वो उच्च गुणवत्ता का होता है और उसे उच्च स्तर पर पृथक करने की जरूरत है और ऐसा स्रोत स्थल पर करना ही बेहतर है। यह सब किये बिना प्लान्ट्स उत्पादन क्षमता से कम काम करते हैं और निष्क्रिय हो जाते हैं। दिशानिर्देश 3,000 लैंडफिल साइट्स को अपशिष्ट मुक्त करने का भी अवसर देता है, जहां केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मुताबिक 800 मिलियन टन अपशिष्ट पड़ा हुआ है। यह न केवल बहुमूल्य जमीन को मुक्त करेगा जिससे कि उस जमीन को हरा-भरा कर बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है बल्कि ये पर्यावरणीय आपदाओं को रोकने में भी मदद कर सकता है। इन पारम्परिक लैंडफिल्स में डम्प हुए अपशिष्ट की बायोमाइनिंग कर उन्हें दोबारा इस्तेमाल करने के लिए विचारपूर्वक रणनीति की जरूरत है। शहरों से भी इन लैंडफिल साइट्स में अपशिष्ट भेजना बंद करना होगा अन्यथा साफ किये जाने के बाद भी ये दोबारा भर जाएंगे। अच्छी खबर यह है कि भारत की ठोस कूड़ा-कचरा प्रबंधन रणनीति इस तरह से तैयार की गई है जो वस्तु की खपत के बाद उसे दोबारा इस्तेमाल के लायक बनाती है। यह असल चक्रीय अर्थव्यवस्था के लक्ष्य पर आधारित दृष्टिकोण है। चूंकि रणनीति में चीजों के पूरी तरह दोबारा इस्तेमाल और बेकार नहीं रखने पर जोर है, तो हम सीख पाएंगे कि हम किन चीजों की रीसाइक्लिंग नहीं कर सकते और ऐसी चीजों का इस्तेमाल कम करेंगे। यह नीति और व्यवहार को और भी पर्यावरण हितैषी बनाएगा। नीतियां तो विकसित हो रही हैं, लेकिन हमारे व्यवहार में तेजी आना बाकी है। स्रोत स्थल पर अपशिष्ट को पृथक करना अब भी हमारा कमजोर पक्ष है। यह जिस स्तर पर और जिस तेजी से होना चाहिए, वैसा हो नहीं रहा है। अगर घरेलू स्तर पर अपशिष्ट को पृथक किया भी जाता है, तो वो पृथक रूप में प्रसंस्करण इकाइयों तक पहुंचता नहीं है। सच तो यह है कि प्रसंस्करण दुर्घटनावश हो रहा है और वो भी इसलिए हो रहा है क्योंकि ऐसे लोग भी हैं जिन्हें रोजी-रोटी के लिए अपशिष्ट चाहिए। इन्हें हम कूड़ा बीनने वाला कहते हैं। शहर प्रबंधक अब भी इस कूड़े के प्रसंस्करण और प्रभावी तरीके से प्रबंधन कर इससे कमाई करने के लिए कई विकल्पों पर काम कर रहे हैं। बुरा तो यह है कि प्लास्टिक कूड़ा, जिसका बड़ा हिस्सा पैकेजिंग से आता है, हमारे शहरों में बढ़ और भर रहा है। हम अब भी यह स्वीकार नहीं करते कि ज्यादातर ÷प्लास्टिक÷ जिसका हम इस्तेमाल करते हैं, उन्हें रीसायकल नहीं किया जा सकता है और इसलिए इनका इस्तेमाल बंद कर देना चाहिए। सिंगल यूज प्लास्टिक की वर्तमान नीति, जिसमें कुछ उत्पादों का चयन इसे भविष्य में खत्म करने के लिए किया गया है, इस वृहद समस्या से निपटने के लिए काफी नहीं है। हम विकास के एक रोमांचक चरण में हैं, जहां शहर के प्रबंधक और नेता अपशिष्ट रणनीतियों पर दोबारा काम कर रहे हैं। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट ने ÷वेस्ट-वाइज÷ शहरों के बेहतर कामों का दस्तावेजीकरण करने के लिए नीति आयोग के साथ साझेदारी की है। यह नई सीख और सबक वाली पुस्तक की तरह होगी जिसे हमें बड़े पैमाने पर अभ्यास करना है। बदलाव का यह एक वास्तविक मौका है।

साभार - डाउन टू अर्थ

भारतीय खगोलविदों ने ब्लेजर टन 599 के बारे में लगाया पता, क्या है यह ब्लेजर

नई दिल्ली। भारत में बैंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एस्ट्रोफिजिक्स के खगोलविदों ने टन 599 नामक एक ब्लेज़र का गामा-किरण प्रवाह से इसमें होने वाले बदलाव का अध्ययन किया। शोधकर्ताओं ने इसके लिए नासा के फर्मी अंतरिक्ष यान का उपयोग किया। ब्लेजर एक सक्रिय, विशाल अण्डाकार आकाशगंगाओं के केंद्रों पर विशाल या सुपरमैसिव ब्लैक होल (एसएमबीएच) से जुड़े बहुत ठोस क्वेसार हैं। क्वेसार सक्रिय आकाशगंगाओं के एक बड़े समूह से संबंधित हैं जो सक्रिय आकाशगंगा के नाभिक (एजीएन) की मेजबानी करते हैं। इनके स्रोत सबसे अधिक आकाशगंगा के बाहर उत्पन्न होने वाली या एक्सट्रैगैलेक्टिक गामा-किरणे हैं।

उनकी विशेषताएं जेट के सापेक्ष होती हैं जो लगभग पृथ्वी की ओर झुकी होती हैं। अपने ऑप्टिकल उत्सर्जन गुणों के आधार पर, खगोलविद ब्लेजर को दो वर्गों में विभाजित करते हैं, पहला फ्लैट-स्पेक्ट्रम रेडियो क्वेसार (एफएसआरक्यू) जिसमें प्रमुख और व्यापक ऑप्टिकल उत्सर्जन लाइनें होती हैं और दूसरा बीएल लैकर्टे ऑब्जेक्ट्स (बीएल लैस), जिसमें लाइनें नहीं होती हैं। 0.725 के रेडशिफ्ट पर, टन 599, जिसे 4 एफजीएल जे1159.5+2914 के रूप में भी जाना जाता है। यह एक अत्यधिक ध्रुवीकृत और अत्यधिक वैकल्पिक रूप से प्रचंड बदलने वाला एफएसआरक्यू है। 2017 में यह पूर्ण विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में फैली एक लंबी चमकदार स्थिति से होकर गुजरी थी। हाल ही में, जुलाई से सितंबर 2021 तक, क्वेसार ने गामा-किरणों में एक उभरती चमक पैदा की। भूमिका राजपूत और अश्विनी पांडे ने ब्लेजर की गामा-किरण के उत्सर्जन प्रक्रिया की जांच करने और दमक की स्थिति के दौरान इसके परिणामों की जांच की। खगोलविदों ने फर्मी का उपयोग करते हुए टन 599 का निरीक्षण करने का निर्णय लिया। इस काम को तब अंजाम दिया गया जब टन 599 ने हाल ही में चमकती हुई अवस्था में प्रवेश किया। खगोलविदों ने कहा कि हम यहां ब्लेजर टन 599 के हमारे गमा-किरण के प्रवाह और वर्णक्रमीय परिवर्तनशीलता के अध्ययन के परिणाम प्रस्तुत कर रहे हैं। फर्मी के आंकड़ों से, राजपूत और पांडे ने लगभग एक वर्ष (सितंबर 2020 से अगस्त 2021) की अवधि के दौरान टन 599 का एक दिवसीय बिन्ड लाइट कर्व उत्पन्न किया। अंतिम गामा-किरण प्रकाश वक्र में इस ब्लेज़र के 256 माप शामिल हैं। उन्होंने बताया कि इस अवधि में अधिकतम गामा-किरण प्रवाह 0.0000224 पीएच /सेमी2/एस के स्तर पर था। अवलोकनों के आधार पर, खगोलविदों ने टन 599 के विभिन्न प्रवाह की स्थितियों के तीन समय अन्तरालों की पहचान की। स्थिर, चमक से पहले और चमक के दौरान। गामा-किरणों के प्रवाह में सबसे बड़ी विविधता मुख्य-चमकदार अंतराल (लगभग 0.35 प्रतिशत) पाया गया, जबकि चमक से पहले वाले अंतराल के दौरान, स्रोत ने 0.22 प्रतिशत के स्तर पर प्रवाह में भिन्नता प्रदर्शित की। हालांकि, आधे समय के अंतराल में कोई महत्वपूर्ण प्रवाह भिन्नता नहीं पाई गई। शोधकर्ताओं ने पाया कि लॉग परबोला (एलपी) मॉडल तीनों युगों के दौरान टन 599 के गामा-रे स्पेक्ट्रा का सबसे अच्छा वर्णन करता है। यह इंगित करता है कि इस ब्लेजर के जीईवी गामा-किरणों का स्पेक्ट्रम घुमावदार है। खगोलविदों ने कहा कि यह भी अनुमान है कि गामा-किरण उत्सर्जक क्षेत्र का आकार लगभग 103 बिलियन किलोमीटर है। उन्होंने कहा कि टन 599 के गामा-रे उत्सर्जक बूंद का स्थान इसके ब्रॉड लाइन क्षेत्र (बीएलआर) के बाहर हो सकता है। यह शोध एआरक्सिव प्री-प्रिंट सर्वर में प्रकाशित हुआ है।

तापमान में हुई 10 डिग्री की वृद्धि तो 25 फीसदी से ज्यादा घट जाएगा मिट्टी में मौजूद कार्बन भंडार

नई दिल्ली। हाल ही में किए एक नए अध्ययन से पता चला है कि जिस तेजी से तापमान में वृद्धि हो रही है उसके चलते मिट्टी बंन अवशोषित करने की जगह छोड़ने लगेगी। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि तापमान में 10 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि के साथ मिट्टी में मौजूद 25 फीसदी से ज्यादा कार्बन भंडार खत्म हो जाएगा।

गौरतलब है कि बढ़ते तापमान के प्रभाव को समझने के लिए शोधकर्ताओं ने दुनिया भर से लिए गए मिट्टी के 9,000 से ज्यादा नमूनों का विश्लेषण किया है, जिसके निष्कर्ष से पता चला है कि औसत तापमान में होती वृद्धि के साथ मिट्टी की कार्बन भंडारण क्षमता घटती जाएगी, जिसका असर पृथ्वी की जलवायु पर भी पड़ेगा। यह पूरा अध्ययन भूमि के ऊपरी 50 सेंटीमीटर पर मौजूद मिट्टी पर केंद्रित है देखा जाए तो यह ÷सकारात्मक प्रतिक्रिया÷ का एक उदाहरण है, जहां बढ़ते तापमान के कारण वातावरण में अधिक कार्बन उत्सर्जित हो रहा है जो फिर से तापमान में वृद्धि का कारण बन रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार किस तरह की मिट्टी कितना कार्बन मुक्त करेगी यह मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करेगा। अनुमान है कि महीन कणों की तुलना में बड़े कणों वाली मिट्टी करीब तीन गुना ज्यादा कार्बन मुक्त करेगी। इस बारे में शोध और एक्सेटर विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाले प्रोफेसर इयान हार्टले ने जानकारी दी है कि सम्मिलित रूप से वातावरण और पेड़ों की तुलना में मिट्टी में कहीं ज्यादा कार्बन जमा है, ऐसे में यदि उससे थोड़ा प्रतिशत भी कार्बन मुक्त होता है तो वो हमारी जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। उनके अनुसार भूमध्य रेखा से दूर उच्च अक्षांशों पर जो बड़े कणों वाली मृदा है उसपर जलवायु परिवर्तन का खतरा सबसे ज्यादा है। ऐसे में उनका मानना है कि इस तरह के कार्बन भंडारों पर विशेष रूप से ध्यान देने की जरुरत है क्योंकि ठन्डे क्षेत्रों में तापमान कहीं ज्यादा तेजी से बढ़ रहा है। वहीं इसके विपरीत उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाए जाने वाली महीन कणों वाली मिट्टी में मौजूद कार्बन भंडार पर ग्लोबल वार्मिंग का खतरा तुलनात्मक रूप से कम है। प्रोफेसर हार्टले के अनुसार तापमान में 10 डिग्री सेल्सियस वृद्धि होने की सम्भावना अभी लगभग न के बराबर है। लेकिन इसके बावजूद हमने इस पैमाने का उपयोग इसलिए किया है ताकि हम यह विश्वास दिला सकें की हमने जो प्रभाव देखें हैं उनके लिए तापमान में हो रही वृद्धि ही जिम्मेवार है। उन्होंने आगे बताया कि परिणाम यह स्पष्ट करते है कि जैसे-जैसे तापमान में वृद्धि होगी मिट्टी कहीं ज्यादा मात्रा में कार्बन मुक्त करने लगेगी।

वायु प्रदूषण और मौसम में आए बदलाव से बढ़ने वाले पराग कण हमें पहुंचा सकते हैं नुकसान

पंजाब। देखने में आकर्षक लगने वाले पराग कण हमारे स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकते हैं। हाल ही में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा इनपर किए एक शोध से पता चला है कि वायु प्रदूषण और मौसम में आए बड़े बदलाव वातावरण में मौजूद इन पराग कणों की सघनता को प्रभावित कर सकते हैं। इतना ही नहीं शोध में यह भी सामने आया है कि अलग-अलग तरह के पराग कणों को मौसम में आया बदलाव अलग-अलग तरीके से प्रभावित करता है।

देखा जाए तो यह पराग कण हवा में घुले रहते हैं। जब हम सांस लेते हैं तो यह हमारी सांस के जरिए हमारे शरीर में पहुंच जाते हैं जहां यह ऊपरी श्वसन तंत्र में जाकर तनाव पैदा कर देते हैं। इनके कारण नाक से फेफड़ों तक तरह-तरह की एलर्जी हो सकती है, जिससे अस्थमा, एलर्जी और अन्य सांस सम्बन्धी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। यह शोध भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) की सहायता से चंडीगढ़ के पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च (पीजीआईएमईआर) के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया है। यह अध्ययन जर्नल साइंस ऑफ द टोटल एनवायरनमेंट में प्रकाशित हुआ है। अपने इस शोध में शोधकर्ताओं ने चंडीगढ़ शहर के वातावरण में मौजूद पराग कणों पर मौसम और वायु प्रदूषण के पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है। शोधकर्ताओं ने हवा में बनने वाले पराग पर तापमान, वर्षा, सापेक्षिक आर्द्रता, हवा की गति, हवा की दिशा और आसपास मौजूद प्रदूषण के कणों जैसे पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) और नाइट्रोजन ऑक्साइड के संबंधों का पता लगाया है। शोध के अनुसार मौसम या पर्यावरण की अलग-अलग परिस्थितियों के चलते वातावरण में मौजूद यह पराग कण स्थान के आधार पर अलग-अलग हो सकते हैं। इससे पहले भी किए गए शोधों में इस बात के प्रमाण मिल चुके हैं कि शहरी हवा में घुले यह पराग कण एलर्जी या उससे सम्बंधित बीमारियों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह पराग वायु प्रदूषण और जलवायु में आते बदलावों के साथ प्रकृति में साथ-साथ रहते हैं। जहां अलग-अलग तरह के पराग कण एक दूसरे के संपर्क में आकर हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं। इस बारे में हाल ही में जर्नल पनास में प्रकाशित एक शोध से भी पता चला है कि वातावरण में इन पराग कणों की सघनता कोविड-19 के संक्रमण को और बढ़ा सकती है। गौरतलब है कि यह शोध 31 देशों में किया गया था। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) की एक रिपोर्ट इनहेरिटिंग ए सस्टेनेबल वर्ल्ड- एटलस ऑन चिल्ड्रेन्स हेल्थ एंड इंवायरमेंट में भी इस बात की जानकारी दी गई है कि धरती पर बढ़ते तापमान और प्रदूषण के चलते पराग कणों की मात्रा में इजाफा हो रहा है जो बच्चों के साथ-साथ बड़ों के स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुंचा सकता है। इससे उनमें अस्थमा और अन्य सांस सम्बन्धी बीमारियां हो सकती हैं। इस शोध में यह भी सामने आया है कि अलग-अलग तरह के पराग कणों पर मौसम और वायु प्रदूषकों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। अधिकांश तरह के पराग कण बसंत और शरद ऋतु में बनते हैं, जब फूलों के खिलने का मौसम होता है। वहीं वायु जनित पराग सबसे अधिक उसी समय बनते हैं जब मौसम की परिस्थितियां उनके अनुकूल होती है। मतलब जब मध्यम तापमान, कम आर्द्रता और कम वर्षा होती है तो इनके फैलने की सम्भावना सबसे अधिक होती है। यह भी देखा गया है कि मध्यम तापमान की स्थिति फूलों की खिलने से लेकर इन पराग कणों के मुक्त होने और फैलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके विपरीत भारी बारिश और उच्च सापेक्ष आर्द्रता के कारण वातावरण से पराग कण साफ हो जाते हैं। हालांकि शोधकर्ताओं को वायुजनित पराग कणों और वायु प्रदूषकों के बीच जटिल और अस्पष्ट संबंध देखने को मिला है। इसपर अभी और शोध करने की जरुरत है। इस शोध से जुड़े प्रोफेसर रवींद्र खैवाल ने जानकारी दी है कि भविष्य में जलवायु में आता बदलाव शहरी क्षेत्रों में पौधों के जैविक और फेनोलॉजिकल मापदंडों को प्रभावित कर सकता है। शोधकर्ताओं के अनुसार शोध के जो निष्कर्ष सामने आए हैं वो वायु जनित पराग, वायु प्रदूषकों और जलवायु कारकों के आपसी संबंधों को बेहतर तरीके से समझने में सहायक होंगे। इनकी मदद से गंगा के मैदानी क्षेत्र में परागण के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए नीतियां तैयार करने में मदद मिलेगी। गौरतलब है कि यह क्षेत्र देश का सबसे प्रदूषित क्षेत्र है। विशेष रूप से अक्टूबर और नवंबर में तो गंगा के मैदानी भागों में वायु प्रदूषण अपने चरम पर पहुंच जाता है। जिसके साथ ही सांस सम्बन्धी बीमारियों का खतरा भी बढ़ जाता है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008